जैन-साहित्य में राम-भावना

डॉ० शशिरानी अग्रवाल

भारत में जैन और बौद्ध दर्शन वेद को प्रमाण न मानने वाले दर्शनों में सबसे प्राचीन तथा विशिष्ट हैं। "बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन-धर्म अधिक, बहुत अधिक प्राचीन है, बल्कि यह उतना ही पुराना है जितना वैदिक धर्म।"[1]

राम-कथा केवल हिन्दू धर्म में ही प्रचलित नहीं, बल्कि बौद्ध और जैन साहित्य में भी बहुत लोकप्रिय रही। वाल्मीकीय रामायण की रचना के उपरान्त राम को केन्द्र बनाकर संस्कृत में विपुल धार्मिक और ललित साहित्य रचा जाने लगा। उसकी लोकप्रियता से बौद्ध और जैन धर्मावलम्बी भी इस ओर आकृष्ट हुए। हिन्दू धर्म की प्रतिद्वन्द्विता में अपने धर्म का प्रचार और प्रसार करने के लिए उन्होंने पौराणिक चरित-काव्यों की रचना आरम्भ की, जिनमें उन्होंने नूतन धार्मिक चरितों और आख्यानों की उद्भावना की और साथ ही हिन्दू धर्म में प्रतिष्ठित राम और कृष्ण को अपनाया। हिन्दू धर्म की अपेक्षा अपने धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने इन चरित-नायकों को जैनमतावलम्बी के रूप में प्रस्तुत किया। इन कवियों का उद्देश्य जैन धर्म के प्रति समाज में श्रद्धा उत्पन्न करना तथा विविध देवताओं को ऋषभदेव की शक्ति के रूप में मानना था। उनकी यह नीति बृहत् धार्मिक योजना का एक अंग थी।

जैन साहित्य में राम-कथा की दो धाराएँ मिलती हैं—एक विमल सूरि की और दूसरी आचार्य गुणभद्र की। पहली परम्परा का अनुकरण रविषेण और स्वयंभू ने किया है। कन्नड़ में भी विमल सूरि की कथावस्तु को आधार बनाकर रामकथा का निरूपण किया गया।[2] यह वाल्मीकि की रामकथा के बहुत निकट है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में विमल सूरि की राम-कथा ही प्रचलित है, लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में विमल सूरि की परम्परा को अधिक महत्ता देते हुए भी गुणभद्र की परम्परा भी मान्य है। गुणभद्राचार्य की परम्परा में पुष्पदन्त ने 'पद्म-पुराण' की रचना की। विमल सूरि की परम्परा में जैन रामकाव्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी[3] और कन्नड़ भाषा में[4] प्रणीत हुए हैं। विमलसूरि की धारा पउमचरिय के रचना-काल (प्रथम शताब्दी-पश्चात्) से लेकर लगभग बीसवीं शताब्दी के अन्त तक प्रवहमान रही[5] और गुणभद्र की परम्परा ९वीं शताब्दी ई० से प्रारम्भ होकर १३वीं शताब्दी ई० तक गतिशील रही।[6] जैन साहित्य की राम-कथा अपने विस्तार की विशेषता के साथ-साथ अन्य अनेक विशेषताओं को संजोये हुए है। जैन मान्यता के अनुसार निरन्तर गति-शील कालचक्र की प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में त्रिषष्टि शलाका-पुरुषों का जन्म हुआ करता है। जैन-पुराण में चरित-वर्णन के लिए ये त्रिषष्टि शलाकापुरुष ही मान्य हैं। ये त्रिषष्टि शलाकामहापुरुष ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीस तीर्थंकर, भरत से ब्रह्मदेव तक बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेवों के रूप में प्रत्येक कल्प में होते हैं। पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण इनके आगामी जन्म की परिस्थितियां, क्रिया-कलाप, शारीरिक लक्षण और रूप-रंग भी निश्चित रहते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी के ६३ शलाकापुरुषों का जन्म हो चुका है। अब अगली उत्सर्पिणी के आने तक कोई शलाकापुरुष नहीं उत्पन्न होगा।[7] इस मान्यता के अनुसार राम, मुनिसुव्रत तीर्थं-

---

१. दिनकर, रामधारीसिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १२९

२. प्रो० मुगुलि : कन्नड़ साहित्य, पृ० १२७

३. (विशेष विवरण के लिए देखिए—राजस्थानी भाषा में राम-कथा—मै०श० गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८४०-८४१) श्री अगरचन्द नाहटा ने श्वेताम्बर विद्वान द्वारा रचित १४ और दिगम्बर विद्वानों द्वारा प्रणीत ८ रचनाओं का उल्लेख किया है।

४. हिरण्मय : कन्नड़-साहित्य में राम-कथा-परम्परा,(मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ), पृ० ७५१

५. आचार्यश्री तुलसी : 'अग्नि-परीक्षा' सं० २०१७ में लिखित इसी परम्परा की जैन रामायण है।

६. उपरिवत्, पृ० ७८

७. उपाध्याय, डा० संकटाप्रसाद : महाकवि स्वयंभू, पृ० ४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर के तीर्थ-काल में हुए थे।[1]

राम-कथा के प्रमुख तीन पात्र—राम, लक्ष्मण, रावण—क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव माने जाते हैं।[2] ये तीनों सदैव समकालीन रहते हैं। ध्यान देने योग्य है कि जैन-परम्परा में रावण राम के विपरीत प्रति-बलदेव नहीं, बल्कि लक्ष्मण के विपरीत प्रति-वासुदेव है। इसीलिए जैन-ग्रन्थों में रावण का वध राम द्वारा न होकर लक्ष्मण द्वारा होता है। इसी भांति ब्राह्मण-परम्परा में वासुदेव संज्ञा जहां विष्णु के अवतार कृष्ण और संभवतः राम को दी गई है[3] तथा बलदेव संज्ञा लक्ष्मण की हो सकती है, वहां जैन-परम्परा में इस क्रम को उलट दिया गया है। जैन-ग्रन्थों में राम ही बलदेव हैं और लक्ष्मण वासुदेव। इस नाम-विपर्यय के साथ ही वर्ण-विपर्यय भी हो गया है। फलस्वरूप जैन लक्ष्मण श्याम-वर्ण हैं और राम का 'पद्म' नाम रूढ़ हो गया। जैन-परम्परा में राम पद्म-वर्ण अर्थात् गौर-वर्ण माने गए हैं जबकि ब्राह्मण-परम्परा उन्हें बराबर नील-कमल की तरह श्याम-वर्ण मानती आई है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार वर्ण, प्रेम और कृपा—तीनों दृष्टियों से राम मेघ-धर्मा हो गए हैं।[4]

जैन-परम्परा में राम-कथा का सबसे प्राचीन क्रम-बद्ध वर्णन 'पउमचरिय' में मिलता है, जिसके प्रणेता नागिलवंशीय स्थविर आचार्य राहुप्रभ के शिष्य स्थविर श्री विमल सूरि हैं। ईसा से प्रथम शताब्दी पश्चात् इस ग्रन्थ की रचना हुई। पउम-चरिय के आरम्भ में ही कवि का कथन है कि "उस पद्म-चरित को मैं आनुपूर्वी के अनुसार संक्षेप में कहता हूँ जो आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा है और नामावली निबद्ध है।"[5] 'णामावलियनिबद्ध' शब्द से प्रतीत होता है कि विमलसूरि के पूर्व जैन-समाज में राम का चरित पूरी तरह विकसित नहीं हो पाया था।[6] यहां एक बार पुनः यह तथ्य उल्लेख्य है कि जिस समय विमलसूरि ने जैन राम-कथा का सविस्तार वर्णन प्रथम बार किया, उनके सामने न केवल जैन साधु-परम्परा में प्रचलित 'णामावलिय निबद्ध' राम-कथा का रूप था, वरन् पूर्ववर्ती वाल्मीकि रामायण, बौद्ध जातकों और महाभारत के रामोपाख्यान में वर्णित राम-कथा के रूप भी अवश्य वर्तमान रहे होंगे। किन्तु विमलसूरि और परवर्ती जैन कवियों ने न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ ही पूर्ववर्ती राम-कथा को स्वीकार किया। यह परिवर्तन नामों से आरम्भ होता है।

जैन राम-काव्यों में राम 'पद्म' हो जाते हैं। उनकी मां का नाम भी कौशल्या नहीं रह जाता। पउम-चरिय[7] के अनुसार पद्म (राम) की माता का नाम अपराजिता था और वह असहस्थल के राजा सुकोशल तथा अमृतप्रभा की पुत्री थी। शुक्ल जैन रामायण में भी पद्म की माता अपराजिता दर्भस्थल के राजा सुकोशल और अमृतप्रभा की पुत्री कही गयी है।[8] गुणभद्र के उत्तरपुराण तथा पुष्पदन्त के महापुराण में पद्म की माता का नाम सुबाला माना गया है। पूर्व-जन्म-विषयक कथाओं के अनुसार कौशल्या पहले अदिति[9], शतरूपा[10] और कलहा[11] थीं। राम के पिता का नाम जैन-परम्परा में भी दशरथ है। वाल्मीकीय रामायण, रघुवंश तथा हरिवंशपुराण के अनुसार अज और दशरथ में पिता और पुत्र का सम्बन्ध है किन्तु पउमचरिय (पर्व २१-२२) में दशरथ की जो विस्तृत वंशावली उल्लिखित है, उसके अनुसार अनरण्य के दो पुत्र थे—अनन्तरथ और दशरथ। अनन्तरथ अपने पिता अनरण्य के साथ जिन-दीक्षा ले लेते हैं, जिससे दशरथ को राज्याधिकार मिलता है। मुनिश्री शुक्लजी महाराज की रामायण में दशरथ के पिता का नाम वर्णान्तर होकर अणरन्य हो गया है।[12]

जैन धर्म-ग्रन्थों में राम-कथा के प्रधान पात्रों के पूर्वजन्म की कथाओं को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया गया है। पउमचरिउ में राम के तीन पूर्व जन्मों का उल्लेख है। जिसके अनुसार राम क्रमशः वणिक-पुत्र धनदत्त, विद्याधर राजकुमार नयनानन्द तथा राजकुमार श्री चन्द्रकुमार थे। लक्ष्मण किसी पूर्व-जन्म में धनदत्त (राम) का भाई वसुदत्त था; बाद में वह हरिण के रूप में प्रकट हुआ तथा अन्य

---

१. जैन, डा० देवेन्द्रकुमार : अपभ्रंश भाषा और साहित्य, पृ० ८७
२. दिनकर, रामधारीसिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३७६, पादटिप्पणी २
३. सिंह, नामवर : मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ६८६
४. तुलसी : आधुनिक वातायन से, पृ० ३०६
५. णामावलियनिबद्धं आयरिय परागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणु पुव्विं समासेण॥१/८
६. प्रेमी, नाथूराम : जैन साहित्य और इतिहास पृ० ६२
७. विमलसूरि, २२/१०६-७
८. पं शुक्लचन्द्र महाराज : शुक्ल जैन रामायण, पृ० १५८
९. विभिन्न ग्रन्थों में तपस्या द्वारा अदिति के विष्णु की माँ बनने का उल्लेख है—मत्स्यपुराण, अ० २४३/६ तथा महाभारत, ३/१३५/३ तथा वाल्मीकीय रामायण (दाक्षिणात्य पाठ) १/२६/१०-१७
१०. पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड, अ० २६६
११. उपरिवत्, अ० १०६
१२. शुक्ल जैन रामायण, पृ० १५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म में वह दशरथ-पुत्र हुआ।[1]

गुणभद्र के उत्तरपुराण में राम-लक्ष्मण अपने पूर्व जन्म में अन्तरंग मित्र थे, भाई नहीं। लक्ष्मण राजा प्रजापति का पुत्र चन्द्रचूल था तथा राम राजमंत्री का विजय नामक पुत्र था। दुराचरण के कारण राजा ने दोनों को प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी, किन्तु मन्त्री उनको एक महाबल नामक साधु के पास ले गया। साधु ने भविष्यवाणी की कि वे वासुदेव तथा बलदेव होंगे, जिसे सुनकर चन्द्रचूल तथा विजय दीक्षा लेकर तप करने लगे और स्वर्ग में क्रमशः मणिचूल तथा स्वर्णचूल देवता बन गए। अगले जन्म में वे लक्ष्मण तथा राम के रूप में प्रकट हुए।[2]

पुष्पदन्त द्वारा रचित 'महापुराण' या 'तिसट्ठि-महापुरिस गुणालंकार'[3] तीन खण्डों में विभक्त है। द्वितीय खण्ड में ६९ से ७९वीं संधि तक रामायण की कथा है। इसी को जैन मतावलम्बी पउम-चरियं या पद्म पुराण कहते हैं। 'महापुराण' (९५९-९६५ ई०) के राम और लक्ष्मण की पूर्वजन्म-विषयक कथा पूर्ववर्ती रचना गुणभद्र के उत्तरपुराण (नवीं शताब्दी) से पूर्णतः साम्य रखती है। स्वयंभूदेव के पउमचरिय (७००-८०० ई०) में भी राम-लक्ष्मण का भवान्तर कथन जैन मान्यतानुसार ही है। इसमें स्वयंभू का अपने पूर्ववर्ती कवियों से कोई उल्लेख्य पार्थक्य नहीं है। राम-लक्ष्मण के अतिरिक्त हनुमान, रावण आदि प्रमुख पात्रों के भी पूर्व भावों का वर्णन जैन-रामायणों में विस्तार से मिलता है। इस प्रकार विमल सूरि, रविषेण, जिनसेन, गुणभद्र, हरिभद्र आदि सभी जैन कवियों ने पुनर्जन्म और जन्मचक्र का विस्तृत वर्णन किया है। पूर्ववर्ती जन्म-वर्णन में राम-लक्ष्मण का चरित्र भी अत्यन्त सामान्य मनुष्यों की तरह मानवीय दुर्बलताओं से युक्त दिखाया गया है।

समस्त जैन-साहित्य में राम-जन्म के पूर्व उनकी माताओं के स्वप्नों को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। पउमचरियं के पच्चीसवें पर्व में इन स्वप्नों का विस्तार से वर्णन है। राम की माता से स्वप्न सुनकर दशरथ ने कहा था कि ये स्वप्न उत्तम पुरुष का जन्म सूचित करते हैं (इमे वरपुरिसं सुन्दरि पुत्तं निवेएन्ति)। पद्म-चरित के अनुसार भी ये स्वप्न 'महापुरुष-वेदी' (महापुरुष का जन्म सूचित करने वाले) थे। गुणभद्र के उत्तरपुराण में भी राम की माता के शुभ स्वप्नों का तथा कैकेयी के पाँच महाफल देने वाले स्वप्नों का उल्लेख किया गया है। इससे भी प्रमाणित होता है कि जैन धर्म में राम को अवतारी रूप में नहीं, महापुरुष के रूप में ही चित्रित किया गया है। अवतारवाद के अभाव के कारण ही जैन रामकथाओं में दशरथ के किसी यज्ञ का निर्देश नहीं मिलता है।

जैन ग्रन्थों में पात्रों के पारस्परिक सम्बन्ध भी वाल्मीकि से भिन्न हैं। विमलसूरि के पउमचरियं में सर्वप्रथम भरत और शत्रुघ्न यमल माने गये हैं।[4] परवर्ती कुछ रामकथाओं में भी भरत और शत्रुघ्न सहोदर कहे गये हैं; उदाहरण के लिए संघदास की वसुदेव हिण्डी और गुणभद्र का उत्तरपुराण देखें। जैन उत्तरपुराण में भरत लक्ष्मण के अनुज माने गये हैं। इसी प्रकार सीता भी पउमचरियं तथा अन्य अधिकांश जैन रामायणों में भूमिजा न होकर जनकात्मजा हैं किन्तु गुणभद्र के उत्तरपुराण और वसुदेव हिण्डी में वे रावणात्मजा हैं। जैन साहित्य के अनुसार जनक की पुत्री में गुण-रूपी धान्य (गुणशस्य) का बाहुल्य था, अतः भूमि की समानता होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया —'भूमिसाम्येन सीता' (पद्म-चरित २६/१६६)।

जहाँ वाल्मीकि के राम 'स्वदार-निरत' हैं और लक्ष्मण सीता के चरणों तक अपनी दृष्टि सीमित रखते हैं, वहां जैन मान्यता के अनुसार राम के अनेक विवाह हुए थे। पुष्पदन्त की राम-कथा में राम की सीता के अतिरिक्त सात और लक्ष्मण की सोलह रानियां हैं। गुणभद्र के उत्तरपुराण में राम की आठ हजार रानियां बताई गई हैं।[5] विमलसूरि के 'पउमचरियं' में भी राम की आठ हजार पत्नियों में से सीता, प्रभावती, रतिनिभा तथा श्रीदामा प्रधान हैं। इन दोनों ग्रन्थों में लक्ष्मण की सोलह हजार पत्नियों का (जिनमें से विशल्या आदि आठ पटरानियां हैं) उल्लेख किया गया है। यहां पर राम और लक्ष्मण का चरित्र उन क्षत्रिय राजाओं का है जो युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् शत्रु-देश की सभी कुमारियों को अपनी पत्नी बना लेते थे। ऐसे स्थलों पर प्रायः राम स्वयं को पीछे रख लक्ष्मण को आगे कर देते हैं; इसी से लक्ष्मण की रानियों की संख्या राम की अपेक्षा बहुत अधिक है। राम के गृहस्थी रूप का वर्णन भी किया गया है। गृहस्थ धर्म सब धर्मों का परम धर्म कहा गया है। (पउमचरियं, २/१३)। गुणभद्र के उत्तरपुराण में राम का १८० पुत्रों के साथ साधना करने का उल्लेख है।

---

१. पउमचरियं, पर्व १०३

२. गुणभद्र : उत्तरपुराण, सन्धि ६७, ९० आदि

३ जैन साहित्य में 'पुराण' प्राचीन कथा और 'महापुराण' प्राचीन काल की महती कथा का सूचक शब्द है। पुराण में प्रायः एक ही महापुरुष का जीवनांकन होता है, महापुराण में ६३ शलाकापुरुषों का चरित्र-वर्णन होता है। पुष्पदन्त ने इसी विशिष्टता को दर्शाने के लिए अपने ग्रन्थ को 'महापुराण' या 'तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार' कहा है।

४. विमल सूरि : पउमचरियं, २५/१४

५. उत्तरपुराण, ७०/१३/९-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमलसूरि के 'पउमचरियं' में सीता के दो पुत्रों के नाम लवण (अथवा अनंग लवण) तथा अंकुश (अथवा मदनांकुश) माने गये हैं (पर्व ९७)।

राम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनके आचरण की सरलता और निष्कपटता है। परम जिन और जैन धर्म में उनकी अपार श्रद्धा है। जैन धर्म के अनुसार मुनियों के दर्शन-लाभ और उन्हें आहार देने में राम की विशेष रुचि दिखाई गई है। विमलसूरि के राम और लक्ष्मण वनवास की अवधि में वंशस्थद्युति नगर में जाकर देशभूषण और कुलभूषण मुनियों के दर्शन करते हैं तथा उन पर अग्नि-प्रभदेव के द्वारा किये हुए उपसर्ग को दूर करते हैं। राम वंशगिरि के शिखरों पर सहस्रों जिन-मन्दिरों का निर्माण करते हैं जिससे पर्वत का नाम वंशगिरि के स्थान पर रामगिरि हो जाता है। आगे चलकर वे सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियों को आहार देकर पंचाश्चर्य की प्राप्ति करते हैं। गिद्ध पक्षी का पूर्वभव जानकर उसे 'जटायु' नाम देते हैं और रावण द्वारा आहत मरणासन्न जटायु को णमोंकार मन्त्र सुनाकर मोक्षपथ-गामी बना देते हैं। राम और सुग्रीव की मैत्री-शपथ भी जिनालय में जिन धर्म के अनुसार होती है।

राम की वन-यात्रा के सम्बन्ध में इन परिवर्तनों से स्पष्ट है कि जैन धर्म का प्रभाव बढ़ाने के लिए ही इन कवियों ने वाल्मीकि से भिन्नता उत्पन्न की है।

पउमचरियं के अहिंसावादी राम कुम्भकर्ण को बन्दी बनाकर (पर्व ६१) युद्धोपरान्त मुक्त कर देते हैं। इसी प्रकार इन्द्रजित को भी बन्दी बनाकर (पर्व ६१) युद्ध के अन्त में मुक्त कर देते हैं (पर्व ७५)। रामचरित-कथा में ये परिवर्तन मुख्यतः दो कारणों से किये गए हैं—

१. जनश्रुतियों का प्राधान्य, तथा

२. सकल समाज को ऋषभदेव की शिष्य-परम्परा में परिगणित करने का लक्ष्य।

इसलिए आधिकारिक कथा में यत्र-तत्र जैन धर्म-शिक्षा, जैन दर्शन, साधु धर्म, कर्म-सिद्धान्त और पूर्वभव के वृत्तान्तों का विवेचन मिलता है। उदाहरणार्थ, वनवास में राम सीता को उन सभी वृक्षों का नामपूर्वक संकेत करते हैं जिनके नीचे तीर्थंकरों को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ था।[1]

जैन राम अहिंसक अवश्य हैं किन्तु भीरु नहीं। पउमचरियं के अनुसार राम तथा लक्ष्मण ने उन म्लेच्छों को हरा दिया था, जो जनक के राज्य पर आक्रमण करने की तैयारियां कर रहे थे (पर्व २७)। बचपन से ही उनमें अपार शक्ति और पराक्रम है।[2] स्वयंभू के राम भी पवन की भांति थे जिन्होंने अग्निसदृश लक्ष्मण को साथ लेकर शत्रुसेना को ध्वस्त किया था।[3] इसी प्रकार सीता-स्वयंवर के अवसर पर एकत्र असंख्य अभिमानी राजाओं का मान-मर्दन प्रत्यञ्चा चढ़ाकर किया था। उन्होंने वनवास के घटना-संकुल जीवन में अनेक दुष्टों[4] का दलन और मान-मत्सर भंग किया था। अनेक सज्जनों[5] का परित्राण भी परोपकारी राम ने किया था।

किन्तु इन कवियों ने राम को देव-रूप में नहीं, वरन् मानव-रूप में चित्रित किया है। पम्प रामायण के राम भी उच्चस्तरीय जीव हैं।[6] वे मानवीय गुणों और दुर्बलताओं से युक्त हैं। इसलिए सीता-हरण के अवसर पर सामान्यतः बहुत शान्त, धीर-गंभीर दिखाई देने वाले राम के स्त्री-परायण हृदय का कोमल पक्ष उद्घाटित होता है। पउमचरियं के राम कुटिया में सीता को न पाकर मूच्छित हो जाते हैं।[7] पउमचरिउ में भी राम की ऐसी ही करुण स्थिति दर्शायी गई है।[8] लक्ष्मण के शक्ति लगने पर भी भ्रातृ-वियोग की आशंका उन्हें मूर्च्छित कर देती है।[9] पुष्पदन्त के राम भी वनस्पति और वन्य जीवों से सीता के विषय में प्रश्न करते हुए विलाप करते हैं।[10] पउमचरियं (पर्व ९२-९४) के राम को, जनता से सीता की निन्दा सुनकर उसके चरित्र पर सन्देह हुआ और जिन-मन्दिर दिखलाने के बहाने अपने सेनापति कृतान्तवदन से उन्हें भयानक वन में छुड़वा दिया। परवर्ती जैन साहित्य में—भद्रेश्वर की 'कहावली' (११ वीं श० ई०), हेमचन्द्र की जैन रामायण (१३ वीं श० ई०), देव विजयगणि की जैन रामायण (१९५६ ई०) में—सीता के त्याग का कारण सपत्नियों के अनुरोध पर

---

१. विमलसूरि : पउमचरियं, ३२/४-५

२. उपरिवत्, २१/५

३. स्वयंभू : पउमचरिउ, २१/७

४. रुद्रभूति, कपिल ब्राह्मण, महीधर, अनंतवीर्य, अरिदमन, उत्पाती, यक्षादि, विटसुग्रीव, राक्षसादि, (पउमचरियं)।

५. वज्रकर्ण, बालिखिल्य, मुनिवर्ग, जटायु, सुग्रीव, विराधित (पउमचरियं)।

६. नागचन्द्र : पम्प रामायण

७. विमलसूरि, पर्व ४४

८. स्वयंभू, ३९/२/९

९. वही, ६७/२

१०. महापुराण, ७३/४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीता द्वारा बनाया गया रावण-चित्र माना गया है। स्वयंभू ने पहले राम में लोकमत के प्रति आदरभाव सीता-अपवाद के प्रसंग से दिखाया है किन्तु मूल ज्ञात होने पर राम के अनुताप का चित्रण भी सुन्दर किया है।[1] इसी प्रकार आचार्य तुलसी के राम भी बाद में पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसते दिखाए गए हैं।[2] जैन साधु ब्रह्म जिनदास, गुणकीर्ति और विनयसमुद्र ने भी इस परम्परा में राम का चरितांकन अपने काव्यों में किया है। हिन्दू सम्प्रदाय में रावण आदि को राक्षस कहकर उन्हें निन्दा और भर्त्सना का पात्र ठहराया गया है। रावण के बाह्य और आन्तरिक रूपों में जो कुरूपता आ गई थी, जैन कवि उससे अत्यन्त क्षुब्ध थे। इसलिए पुष्पदन्त ने कहा है कि वाल्मीकीय रामायण और व्यास के वचनों पर विश्वास करने वाले लोग कुमार्ग-रूपी कुएं में गिर पड़ते हैं (महापुराण, ६९/३/११)। इन कुरूपताओं को दूर करते हुए कुछ जैन कवियों ने तो रावण को नायक पद पर प्रतिष्ठित करते हुए काव्य-रचनाएं कीं। जिनराज सूरि और मुनि लावण्य ने पृथक्-पृथक् 'रावण-मन्दोदरी-संवाद' नामक ग्रन्थों का प्रणयन रावण-चरित्र की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए ही किया। असंगतियों को यथासंभव अपने ग्रन्थों से दूर रखने के प्रयास ने और धार्मिक उदार दृष्टिकोण ने जैन रामकाव्यों को अनुपम विशिष्टता प्रदान की है। विद्याधर राक्षस और वानर-वंश के प्रति जैनाचार्यों का दृष्टिकोण हिन्दुओं से अधिक सहानुभूतिपूर्ण प्रतीत होता है। इस विषय में जैन धर्म की उदारता की प्रशंसा डॉ० हीरालाल जैन ने मुक्तकंठ से की है।[3] वाल्मीकि ने जहां इनके वंशों का वर्णन अपनी कथा के उत्तरकांड में किया है, वहां जैन कवियों ने राम-कथा का प्रारम्भ ही इनके विशद वर्णन से करना समीचीन समझा है। विमलसूरि ने पउमचरियं के ११८ उपदेशकों में से २० में, रविषेण ने पद्मपुराण के प्रथम १९ पर्वों में और स्वयंभू ने प्रथम १९ संधियों में राक्षसों, वानरों और विद्याधरों का वर्णन किया है।

इन्होंने राक्षसों और वानरों को विद्याधर वंश की दो भिन्न मनुष्य जातियां कहा है। उन्हें कामरूपता एवं आकाशगामिनी विद्याएं सिद्ध थीं। विद्याधरों की उत्पत्ति के विषय में पउमचरियं में युक्तियुक्त वृत्तान्त मिलता है—श्री वृषभ (प्रथम तीर्थंकर) ने तपस्या करने के उद्देश्य से सौ पुत्रों में से भरत को राज्य सौंपकर दीक्षा ली थी। बाद में नमि और विनमि उनके साथ पहुँचे और राजलक्ष्मी मांगने लगे। विविध विद्याएं देकर ऋषभनाथ ने उन्हें वैताढ्य पर्वत (रविषेण के अनुसार विजयार्ध) अर्थात् विन्ध्य प्रदेश में अपना राज्य स्थापित करने का परामर्श दिया। ये नमि और विनमि राजकुमार ही विद्याधरों के पूर्वज हैं। ध्वजाओं और भवन-शिखरों पर वानर-चिह्न रहने के कारण ही विद्याधर वानर कहलाए। मेघवाहन नामक एक विद्याधर की दीर्घ सन्तान-परम्परा में राक्षस नामक ऐसा प्रभावशाली पुत्र हुआ कि उस वंश का नाम ही राक्षस वंश पड़ गया। हरिभद्र ने धूर्त्तायनम् (८वीं शताब्दी ई०) में तथा अमितगति ने 'धर्म-परीक्षा' (११वीं श०ई०) में वाल्मीकीय रामायण में वर्णित हनुमान के समुद्र-लंघन जैसी घटनाओं को असंभव और हास्यास्पद बताया है। ब्रह्म जिनदास ने हनुमंतरास तथा सुन्दरदास ने हनुमान-चरित को नया स्वरूप प्रदान किया। इन तर्कसंगत आख्यानों को लक्ष्य करके ही श्री मुनि पुण्यविजय ने कहा है—"रामायण के विषय में जैनाचार्यों ने अपनी लेखनी ठीक-ठीक चलाई है।"[4]

रामकथा-सम्बन्धी घटनाओं को लौकिक रूप में चित्रित करने का प्रयास करते हुए जैनाचार्यों ने विद्याधर, राक्षस और वानर को एक ही मानवकुल की विभिन्न शाखाएं बताया। ये आपस में वैवाहिक सम्बन्ध भी करते हैं।[5] इनके वर्णनों में हिन्दू देवताओं जैसे इन्द्र आदि के नाम भी आए हैं—किन्तु जैन रामायणकारों ने उन्हें भी मनुष्य ही माना है और प्रत्येक को कभी न कभी जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण करते दिखाया है। पउमचरियं (पर्व १०८) में हनुमान दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त करते हैं एवं विभीषण अपने पुत्र सुभूषण को राज्य सौंपकर जैन दीक्षा लेते हैं (पर्व ११४)। बालि भी दशानन के साथ जीव-नाशक युद्ध न कर, सुग्रीव को राज्य सौंपकर दीक्षा ले लेता है।[6] रावण की धार्मिक प्रवृत्ति जैन रामकाव्यों में कहीं-कहीं तो राम से भी बढ़ी हुई है। युद्ध-काल में राम जिन-पूजा भूल जाते हैं, पर रावण नहीं भूलता। पम्परामायण का रावण जिन-भक्त है। उसके महल में जिनेश्वर की पूजा प्रतिदिन होती है। इसके रचयिता ने रावण को महापुरुष के रूप में चित्रित किया है।[7] देव और दानव कुल का वर्णन करने पर यह संभव न होता। इसलिए इन कवियों ने अपने धर्म के प्रधान लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए हिन्दुओं के देव और दैत्य कुलों को भी मानव जाति में परिवर्तित करके उनका वर्णन किया है।

इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जैन राम-कथाकारों ने पात्रों के चित्रण में जिन-वन्दना और जैनधर्मोपदेश-कथन के अवसर बार-बार ढूंढ़ निकाले हैं। सीता भी बाल्यकाल से ही जिन-भक्त हैं। जैनमतावलम्बी राम की सहधर्मिणी होने के कारण अनेक अवसरों पर वह जिन-

१. पउमचरिउ, ८३/१६/४
२. आचार्यश्रीतुलसी : अग्नि-परीक्षा, पृ० ८९
३. जैन, डा० हीरालाल : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० ४-५
४. मुनि पुण्यविजय : रामायण का अध्ययन, 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ', पृ० ६७५
५. डॉ० कामिल बुल्के : रामकथा, पृ० ६४०
६. स्वयंभू : पउमचरिउ, १२/११/२
७. नागचन्द्र : पम्परामायण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्चना करती हुई दिखाई गई हैं। अन्ततः केश-लुंचन करके (सिर के बाल नोंचकर) मुनि से दीक्षा ग्रहण करती हैं। विमल सूरि की सीता के दीक्षा-गुरु सर्वगुप्त नामक मुनि हैं और स्वयंभू की सीता सर्वभूषण से दीक्षा लेती हैं। नायक राम के चरित से भी ऐसे अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं। सीतावरण के पश्चात् घर लौटने पर राम की जिन-वंदना (पउमचरिउ २२/१), वन-गमन की पूर्व रात्रि में जिनाराधना (पउम चरिउ २३/१०/१), वनवास में चन्द्रप्रभु की प्रतिमा का दर्शन (पउम चरियं २५/७/६), वंशस्थ नगर में मुनियों का उपसर्ग-निवारण आदि ऐसी ही घटनाएं हैं। पत्नी-वियोग से व्याकुल राम अपने को सांत्वना देने के लिए भी जिन-मन्दिर में प्रार्थना करते हैं। (पउमचरिउ, ४०/१८), सीता की प्राप्ति के पश्चात् भी शान्तिनाथ की स्तुति करते हैं। सीता के जिन-दीक्षा लेने के पश्चात् वे तपस्वी हो जाते हैं। रत्न-चूल और मणिचूल नामक दो देवताओं द्वारा ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण हो वे केवली हो जाते हैं और सत्रह हजार वर्ष तक जीवित रहकर निर्वाण प्राप्त करते हैं।[1] गुणभद्र के राम सुग्रीव, विभीषण आदि पांच सौ राजाओं तथा १८० पुत्रों के साथ साधना करते हैं और ३९५ वर्ष बीतने पर उन्हें निर्वाण प्राप्त होता है। स्वयंभू के राम लक्ष्मण-वियोग से आतुर हैं। वे कोटिशिला पर तपश्चरण करते हैं और निर्वाण को प्राप्त होते हैं।[2] 'पउमचरिउ' की मन्दोदरी ने सीताहरण के पश्चात् रावण को समझाते हुए जो कुछ कहा है वह समस्त जैन धर्म का निचोड़ है। वास्तविकता यह है कि जैन साहित्य में 'राम-कथा' एक माध्यम मात्र है, जिसके द्वारा काव्य-प्रणेताओं ने जैन दर्शन के मूल-सिद्धांतों का, सातों तत्त्वों (जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष) का सम्यक् निरूपण किया है। जैन रामकाव्यों में रावण-वध की भांति शम्बूक-वध भी राम द्वारा नहीं, लक्ष्मण द्वारा होता है (पउमचरियं, पर्व ४३)। बालि-वध भी लक्ष्मण ही तीक्ष्ण बाण से सिर काटकर करते हैं।[3] वध करने के कारण ही लक्ष्मण चतुर्थ नरक में जाते हैं। इस कल्पना में जैन अहिंसावाद का प्रभाव स्पष्ट है। इससे राम की महत्ता कम नहीं होती। लक्ष्मण की प्रेरक शक्ति और मार्गदर्शक राम ही हैं। सफलता लक्ष्मण को मिलती है, आशीर्वाद राम का होता है। धर्मचर्चा और निःस्वार्थ कर्त्तव्य-परायणता में राम लक्ष्मण से आगे रहते हैं। धीरोदात्त नायक के समस्त गुण राम में पाये जाते हैं। राम के चरित्र को एक महान् आदर्श जिन-भक्त के रूप में चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष यह है कि रामकथा और राम का चरित्र जैन परम्परा में अवतारवाद की आदर्श भावना से मुक्त, यथार्थ एवं युक्तिसंगत कथा-प्रसंगों पर आधारित, कर्मफलवाद और पुनर्जन्मवाद से पोषित ऐसी शुद्ध मानवीय गाथा है जिसके रूप-स्वरूप में अनेक धार्मिक, दार्शनिक व साहित्यिक धारणाएं सम्बद्ध हैं। जैन धर्म-ग्रन्थों में राम वर्तमान अवसर्पिणी के त्रेसठ शलाका-पुरुषों में आठवें बलदेव के रूप में समादृत हैं। मुनि महेन्द्रकुमार प्रथम का यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है कि आज के बुद्धि-प्रधान युग में जैन रामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा में अधिक प्रशस्त मानी गई हैं; वहां अधिकांश घटनाएं स्वाभाविक और सम्भव रूप में मिलती हैं।[4]

१. विमलसूरि : पउमचरियं पर्व ११०-११८
२. स्वयंभू : पउमचरिउ, सन्धि, ८८/१३
३. गुणभद्र : उत्तरपुराण, ६८/४६३
४. मुनि, महेन्द्रकुमार : अग्नि-परीक्षा, भूमिका, पृ० ७

महाकवि स्वयम्भू

हिन्दी-साहित्य की चर्चा अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं की भांति अपभ्रंश-काल से आरम्भ होती है। यह अपभ्रंश-काल ईसा की छठी शती से लेकर ११वीं शती तक माना जाता है। आचार्य चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक निबन्ध में पहली बार प्रतिपादित किया कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं—राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, ब्रज, अवधी आदि—की मां अपभ्रंश है, संस्कृत नहीं। फिर तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध-चरित' की भूमिका में और पं० केशवप्रसाद मिश्र ने 'कीथ ऑन अपभ्रंश' (इंडियन एण्टीक्वैरी, १९३१) लेख में इसी सिद्धान्त को व्यापक रूप से समझाने की चेष्टा की। दूसरी ओर श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्य-धारा—१९५५' लिखकर अपभ्रंश का साहित्य भी प्रस्तुत कर दिया। हिन्दी में भाषा की दृष्टि से महाकवि स्वयम्भू-कृत 'पउम-चरिउ' का नाम सबसे पहले आता है। डॉ० नामवरसिंह के अनुसार वर्तमान हिन्दी की उत्पत्ति समझने के लिए पीछे स्वयम्भू-काल तक जाना अनिवार्य है। साहित्य की दृष्टि से स्वयम्भू निश्चित रूप से अपभ्रंश का सर्व। श्रेष्ठ महाकवि था (पउमचरिउ—प्र० भारतीय विद्या-भवन, बम्बई)। भारतीय साहित्य में उसका स्थान वाल्मीकि, कालिदास, चन्द, सूर और तुलसी की परम्परा में है। श्री राहुल सांकृत्यायन स्वयम्भू को तुलसी से ऊंचे स्तर का कवि मानते हैं।

श्री कृष्णाचार्य के निबन्ध 'हिन्दी पुस्तक जगत' से साभार
(—राष्ट्रकवि 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ' पृ० ९८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org